मंहगाई की मार जिम्मेदार कौन?

प्रभात कुमार रॉय

आवश्यक वस्तुओं के विशेषकर खाद्य सामग्री के दामों में अविरल रुप से होती जाती बढोत्तरी ने आम मेहनतकश इंसानों की जिंदगी को बेहद दुश्वार बना कर रख दिया है। मनमोहन सिंह की सरकार तो अपनी जिम्मेदारी को राज्य सरकारों पर डाल कर एकदम ही निश्चिंत सी हो गई है। ग्लोबलाईजेशन के दौर में सबसे अधिक मुसीबत है उन गरीब मेहनतकशों की जो अपनी मजदूरी खुद तय नहीं कर सकते हैं। उनकी मजदूरी का कोई समुचित तालमेल निरंतर गति से बढती जाती मंहगाई के साथ कदाचित हो नहीं पाता है। मंहगाई का वास्तविक संबंध किसी तरह से उत्पादन की घनघोर कमी से कदाचित नहीं है, वरन् उन तमाम बिचैलिए जमाखोरों और मुनापफाखोरों से है, जोकि कम दामों उत्पादित खाद्य सामग्री को किसानों से खरीद लिया करते हैं और फिर अनाप शनाप दामों में बाजार में बेचा करते हैं। ऐसे तमाम जमाखोरों और मुनाफाखोरों पर सरकार अपना शिकंजा कसने में पूर्णतः नाक़ाम रही है। मंहगाई पर मचे चैतरफा हाहाकार पर सरकार की केबिनेट बैठक करती है और देश के प्रधानमंत्री महोदय बयान जारी कर देते हैं कि बहुत ही बेबसी के साथ कहते हैं कि बहुत जल्द मंहगाई पर काबू कर लिया जाएगा!

भस्मासुर मंहगाई के प्रश्न पर दरअसल केंद्रीय सरकार का रवैया बेहद बेहूदा साबित हुआ है। केंद्रीय सरकार के खाद्य मंत्री महोदय जिस तरह की गैर जिम्मेदाराना बयान बाजी करते रहते हैं, वह तो आग में घी डालने का काम अंजाम देती रही है। देश आजकल एक ऐसी अर्थव्यवस्था के दौर में है जबकि अमीर और अधिक अमीर होता जा रहा है और गरीब पहले से भी अधिक गरीब होता जा रहा है। देश में आज एक अत्यंत ताकतवर कारपोरेट सैक्टर है जिसमें पचास से अधिक खरबपति विद्यमान हैं। लगभग पांच करोड़ लोगो का एक ताकतवर उच्च तबका मौजूद है। दूसरी ओर केंद्र सरकार की एक उच्च कमेटी खुद ही बयान करती है कि देश के सत्तर प्रतिशत लोग मात्र बीस रुपए रोज पर गुज़र बसर करने के लिए मजबूर हैं। इन हालात में यह तो बखूबी समझा जा सकता है कि निरंतर बढती जाती मंहगाई के कारण उन सभी लोगों की क्या दशा हो रही है, जोकि बेहद गरीब हैं! मंहगाई के प्रश्न पर सरकार की संवेदनहीनता ने तो हतप्रभ करके रख दिया है। आम आदमी के प्रति कोई प्रजातांत्रिक सरकार कितनी उदासीन हो सकती है, यह वास्तव में यह तथ्य बेहद तल्ख़ और भयावह है। खाद्य सामग्री में मंहगाई और मिलावट तो जैसे भारत की विकृत तकदीर बन चुकी है और इस बिगड़ी हुई तकदीर से जंग करना बेहद आवश्यक है।

ग्लोबलाईजेशन के दौर में भारत सरकार की नीतियां अमीरों का कुछ अधिक ही फायदा पंहुचाने की रही। बहुत से दलों की सरकारें बनी और कायम रही, किंतु इस नीति में कोई मूलभूत अंतर नहीं दृष्टिगोचर हुआ। सत्तर फीसदी किसानों के देश में सबसे अधिक उपेक्षित रहा है तो किसान ही! तभी तो विगत दो दशकों में तकरीबन दो लाख किसान खुदकुशी अंजाम दे चुके हैं। राष्ट्रीय योजना आयोग के ऐजेंडे पर कृषि और किसान सबसे नीचे की श्रेणी पर रहे हैं। यकींनन देश को औद्यौगिकरण होना चाहिए। विकास दर में में भी बेहद बढोत्तरी होनी चाहिए। किंतु क्या कृषि की विकास दर पर समुचित तव्वजों नहीं प्रदान की जानी गई। जोकि घटकर मात्रा ढाई फीसदी सालाना रह गई है। 1997 में जहां खाद्यन्न पदार्थो की उपलब्धता 500 ग्राम प्रति व्यक्ति थी, वहीं इस वक़्त यह घटकर 400 ग्राम रह गई है। सरकारी नीतियों के ही परिणामस्वरुप कृषि में शासकीय और प्राइवेट पूंजी निवेश अधिक नहीं बढा है। भारत यदि प्रति वर्ष कम से कम सात हजार करोड़ रुपए का निवेश अंजाम दे तो निरंतर खराब होती जाती स्थिति का मुकाबला

बखूबी किया जा सकता है। देश की निरंतर गति से बढ रही आबादी का पेट भरने की खातिर कृषि का समुचित विकास बेहद जरुरी है। किसानों की घनघोर उपेक्षा ने ही वस्तुतः देश में नक्सलवाद को जन्म दिया और उसे गति भी प्रदान की है।

यूएनओ की एक रिर्पोट बयान करती है कि जिस तरह से मौसम का मिजाज़ तबदील हो रहा है उससे भारत में भविष्य में इक्यावन फीसदी कृषि योग्य भूमि प्रभावित हो सकती है और देश के तकरीबन चालीस करोड़ किसानों पर इसका प्रभाव हो सकता है। मंहगाई से जंग करने के लिए देश को दोहरी कार्यनीति की दरक़ार है। एक तरफ तो मुनाफाखोरों और जमाखोरों पर सरकारी डंडा बहुत सख्ती से चलना चाहिए। दूसरी ओर कृषि और किसानों की दशा को सुधारने का जबरदस्त प्रयास होना चाहिए। देश के कुल उत्पादन में कृषि का हिस्सा मात्रा बीस फीसदी रह गया है। अमेरिका द्वारा संचालित विश्व व्यापार संगठन भारत के किसानों को प्रदान की जाने वाली शासकीय सबसिडी को खत्म करा देना चाहता है। भारत सरकार को इस दबाव के आगे झुकने से स्पष्ट इंकार करना ही होगा अन्यथा देश के किसानांे की पहले से ही खराब दशा और अधिक खराब हो जाएगी। आजादी के दौर के विगत बासठ वर्षो में भारत की आबादी में तीन गुना इज़ापफा हुआ है। निरंतर गति से बढती जाती विशाल आबादी का पेट देश के मेहनतकश किसानों ने ही भरा है।

राज्य व्यवस्था और निरंकुश कारपोरेट बाजार के अनैतिक गठजोड़ ने कुछ ऐसे हालत को तशकील कर दिया है कि किसान और मजदूर हाशिए पर खिसक गए हैं। राजनीति का कारपोरटीकरण और कारपोरेट का राजनीतिकरण भारत की जमहूरियत और राजकाज का विशिष्ट आचरण बन गया है। राजनीति और कारपोरेट बाजार के अनैतिक गठजोड़ का बढती मंहगाई से कुछ खास ही रिश्ता है। बिना किसी शासकीय व्यवधन के बाजार की जबरदस्त ताकतें दामों में इज़ाफा करके भयंकर मुनाफाखोरी कर रही हैं। क्योंकि हमारे वतन के शासकों में बाजार की मुनाफाखोर ताकतों पर लगाम कसने की न तो कोई इच्छाशक्ति है नाहि कोई राजनीतिक प्रतिबद्धता शेष है। अमेरिका का प्रेजिडेंट ओबामा मंहगाई बढाने वालो की तुलना भाड़े के हत्यारों और लुटरे से करता है। बाजारवादी अमेरिकी शासक इस हकीक़त को समझ रहा है, किंतु फिर समाजवादी संविधान वाले देश के शासकों की अक्ल इस प्रश्न पर क्यों काम नहीं कर रही है?

पूर्व प्रशासनिक अधिकारी
09319310533